द्मीत्री ग्रिगोरोविच
रबड़ का पुतला

रूसी बाल-साहित्य में 'रबड़ का पुतला' सम्भवत: सबसे दुखद कहानी है। १८८३ में द्मीत्री वसील्येविच ग्रिगोरोविच ने यह कहानी लिखी। इस प्रतिभाशाली लेखक ने भूदासता के युग में रूसी जीवन का बड़ा सटीक और मार्मिक वर्णन किया है। अपने बचपन के कटु अनुभव उनकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हुए हैं।

ग्रिगोरोविच का जन्म १८२२ में हुआ। उनके पिता ज़मींदार थे। द्मीत्री छोटे ही थे, जब पिता का देहांत हो गया। मां फ़्रांसीसी थीं, उन्हें रूसी नहीं आती थी और वह अपने चारों ओर के जीवन को नहीं समझती थीं। मां-बेटा भी कभी एक दूसरे को न समझ पाए। पिता के बूढ़े भूदास—निकोलाई बाबा ने द्मीत्री को पाला। कालांतर में लेखक ने लिखा: "अपने स्नेह और ममता से वंचित एकाकी बचपन में मुझे निकोलाई बाबा के साथ बिताए क्षणों में ही थोड़ा बहुत लाड़-प्यार मिला।"

क़िस्मत का मारा बच्चा निष्ठुर कलाबाज़ बेक्कर के हाथों पड़ जाता है, जो उसे आत्मसंतुष्ट और निठल्ले लोगों के तमाशे के लिए साधता है। यह कहानी पढ़कर अनाथ, असहाय बच्चे के एकाकी, स्नेहरिक्त जीवन की दुखदायी अनुभूति से पाठक का कलेजा मला जाता है।

(१)

कलाबाज़ बेक्कर का शागिर्द केवल इश्तहारों में ही "रबड़ का पुतला" कहलाता था ; उसका असली नाम था पेत्या ; वैसे तो उसे अभागा बालक कहना ही सबसे उचित होगा।

उसकी कहानी बिल्कुल छोटी सी है, लंबी व जटिल हो भी कैसे जबकि वह केवल आठ बरस का ही हुआ है !

वह पांच बरस का भी नहीं हुआ था, जब मां मर गई, पर फिर भी उसे मां याद थी। अभी तक उसे वह आंखों के सामने जीती-जागती नज़र आती : दुबली-पतली सी औरत, जिसके हल्के पयाल के रंग के झीने बाल सदा उलझे-पुलझे रहते और जो कभी उसे दुलारती, हाथ में जो आ जाता : हरा प्याज़, पाइ, मछली, रोटी उसके मुंह में ठूंसती जाती और कभी बेबात ही उस पर बरस पड़ती, चीखने-चिल्लाने लगती, जो भी हाथ में पड़ जाता, उससे जहां भी हाथ पड़ जाता मारने लगती। तो भी पेत्या उसे अक्सर याद करता था।

पेत्या को वह दिन भी अच्छी तरह याद था, जब मां को दफ़नाया गया ...

जनवरी की मनहूस सुबह थी ; आसमान पर छाए नीचे बादलों से बारीक हिम गिर रहा था ; हवा के झोंकों से चेहरे पर वह सुइयों की तरह चुभता और ठंड से जकड़ी सख़्त ज़मीन पर लहरों सा बढ़ता जाता। पेत्या ताबूत के पीछे-पीछे नानी और वर्वारा धोबिन के बीच चल रहा था। उसके हाथों-पांवों में ठंड से असह्य जलन हो रही थी। वैसे भी उसके लिए इन औरतों के साथ चलना मुश्किल था। वह इधर-उधर से लिए गए कपड़ों में लिपटा हुआ था : कहीं से बूट ढूंढ़ लिए गए थे, जो उसके पैरों से बहुत बड़े थे ; कफ़्तान भी इतना बड़ा था कि अगर उसे पीछे से उठाकर कमर पर बांध न दिया गया होता, तो वह चल ही न सकता ; कनटोप भी जमादार से मांगा हुआ था, जो पल-पल बाद आंखों पर गिर जाता था और पेत्या रास्ता न देख पाता था।

क़ब्रगाह से लौटते हुए नानी और वर्वारा बड़ी देर तक ये बातें करती रहीं कि अब लड़के का क्या किया जाए। कहां उसे कुछ सीखने-वीखने को दिया जाए ? और कौन इस सबका इंतजाम करे ?

लड़का इधर-उधर कभी एक कोने में, कभी दूसरे कोने में, कभी एक बुढ़िया, कभी दूसरी के पास रहता रहा। अगर वर्वारा धोबिन उसकी परवाह न करती, तो न जाने उसका क्या हुआ होता।

धोबिन मख़वाया सड़क पर एक बड़े मकान के पिछले अहाते में तहख़ाने वाली मंज़िल में रहती थी। उसी अहाते में ऊपर की मंज़िल में कुछ सरकस वाले रहते थे। उनके पास कुछ कमरे थे, जो बगल के अंधेरे गलियारे से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। वर्वारा सबको अच्छी तरह जानती थी, क्योंकि वह हमेशा उनके कपड़े धोती थी। उनके यहां जाते हुए वह अक्सर पेत्या को अपने साथ ले जाती थी। सब को उसकी कहानी मालूम थी : सब जानते थे कि वह अनाथ है, उसका कोई आगा-पीछा नहीं। बातों-बातों में वर्वारा कई बार यह जता चुकी थी कि अगर कोई अनाथ पर तरस खाकर उसे अपना काम सिखाने को अपने पास रख ले, तो बड़ा अच्छा हो। पर कोई हां न करता था ; लगता था, किसी को अपने झंझटों से ही फ़ुरसत न थी। बस एक ही ऐसा साहब था, जो न

हां कहता था, न ना। कभी-कभी यह साहब बड़े ध्यान से लड़के को देखता। यह था जर्मन कलाबाज़ बेक्कर।

यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उसके और वर्वारा के बीच गुप-चुप कुछ बात चल रही थी, क्योंकि एक दिन ऐसा मौक़ा देखकर, जब बाक़ी सरकस वाले रिहर्सल पर चले गए और घर में अकेला बेक्कर रह गया, वर्वारा जल्दी-जल्दी पेत्या को ऊपर ले गई और सीधे बेक्कर के कमरे में घुस गई।

बेक्कर बैठा किसी का इंतज़ार करता ही लगता था। वह कुर्सी पर बैठा चीनी मिट्टी का पाइप पी रहा था, जिसकी डंडी मुड़ी हुई थी और उस पर झालर लटक रही थी। उसके सिर पर छोटे-छोटे रंग-बिरंगे मोतियों से काढ़ी चपटी टोपी एक ओर को खिसकी हुई थी। उसके सामने मेज़ पर बीयर की तीन बोतलें रखी हुई थीं – दो ख़ाली और एक अभी-अभी शुरू की गई।

कलाबाज़ का फूला हुआ चेहरा और सांड सी मोटी गर्दन लाल थी ; अहं से भरपूर वह तनकर बैठा था। उसे देखकर इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं रह जाता था कि यहां, घर पर भी वह अपने डीलडौल की ख़ूबसूरती पर गुमान कर रहा है।

"लो, कार्ल बग्दानविच ... यह लड़का है ..." पेत्या को आगे बढ़ाते हुए वर्वारा ने कहा।

"अच्छा बात है," कलाबाज़ बोला। "मगर हम ऐसा नहीं देखता ; लड़का का कपड़ा उतारो ..."

पेत्या अभी तक बुत बना खड़ा था और सहमी-सहमी नज़रों से बेक्कर को देख रहा था ; उसकी यह बात सुनकर वह पीछे को लपका और वर्वारा का लहंगा कसकर पकड़ लिया। बेक्कर ने दुबारा से उसके कपड़े उतारने को कहा और वर्वारा पेत्या का मुंह अपनी ओर मोड़कर उसके कपड़े उतारने लगी, तो पेत्या ने थरथराते हुए उसे पकड़ लिया, चीखने और छटपटाने लगा, जैसे बावर्ची की छुरी तले चूज़ा।

"अरे, क्या बात है? बुद्धू कहीं का! डरता काहे को है? उतारने दे कपड़े, भैया ... कोई बात नहीं ... देखो तो, कैसा बुद्धू है!" धोबिन लड़के की

उंगलियां छुड़ाने की कोशिश करते हुए और साथ ही जल्दी-जल्दी उसकी पतलून के बटन खोलते हुए कहती जा रही थी।

पर लड़का कुछ करने न देता था ; वह न जाने क्यों बुरी तरह से डर गया था और कभी बेल की तरह बल खाता या एकदम सिमट जाता या फ़र्श पर लेट-लेट जाता। चीख-चीखकर उसने सारा घर सिर पर उठा लिया। आखिर कार्ल बग्दानविच का धीरज टूट गया। उसने पाइप मेज़ पर रखा और लड़के के पास आया, इस बात की ओर ज़रा भी ध्यान दिए बिना कि लड़का और भी ज़ोर से लोटने लगा बेक्कर ने उसे जल्दी से अपनी बाहों में भर लिया। पेत्या को पता भी न चला कब वह कलाबाज़ के मोटे घुटनों के बीच दब गया। कलाबाज़ ने पलक झपकते ही उसकी कमीज़ और पतलून उतार दी ; फिर उसने तिनके की तरह उसे उठाया और अपने घुटनों पर लिटाकर उसकी छाती और बगलों को टटोलकर देखने लगा। जहां उसे तुरंत संतोष न होता, वहां वह अंगूठे से दबाता और हर बार जब लड़का छटपटाता, उसे अपना काम न करने देता, तो वह उसे चपत लगा देता।

धोबिन को पेत्या पर तरस आ रहा था : कार्ल बग्दानविच बहुत ही ज़ोर से उसे दबा रहा था ; पर दूसरी ओर वह कुछ कहते हुए भी डरती थी, क्योंकि खुद ही लड़के को यहां लाई थी और कलाबाज़ ने वायदा किया था कि अगर लड़का ठीक निकला, तो वह उसे अपने पास रख लेगा, काम सिखाएगा। लड़के के सामने खड़ी होकर वह जल्दी-जल्दी उसके आंसू पोंछ रही थी, उसे मना रही थी कि रोए नहीं, कि कार्ल बग्दानविच उसका कुछ नहीं बिगाड़ेंगे, वह तो बस उसे देखेंगे ही ...

लेकिन जब कलाबाज़ ने अचानक लड़के को घुटनों के बल बिठाकर उसकी पीठ अपनी ओर कर ली, कंधे पीछे को मोड़ने लगा और पखौरों के बीच उंगलियों से चापने लगा, जब बच्चे की नंगी, सूखी सी छाती पर पसली आगे को उभर आई, उसका सिर पीछे को झटक गया, पीड़ा एवं आतंक से उसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गई, तब वर्वारा से न रहा गया ; वह उसे छुड़ाने को लपकी। इससे पहले कि वह ऐसा कर पाती बेक्कर ने लड़के को उसके हाथों में दे दिया। पेत्या तुरंत ही होश में आ गया – बस थरथराता और हिचकियां लेता जाए।

"बस, बेटा, बस! देखा, कुछ भी तो नहीं किया तुझे!.. कार्ल बग्दानविच तो बस तुझे देखना चाहते थे..." बच्चे को दुलारते-पुचकारते हुए धोबिन कहती जा रही थी।

उसने चुपके से बेक्कर की ओर देखा; बेक्कर ने सिर हिला दिया और गिलास में बीयर भर ली।

दो दिन बाद जब लड़के को बेक्कर के हवाले करने का समय आया तो धोबिन को अपनी सारी चालाकी दिखानी पड़ी। धोबिन ने अपने पैसों से पेत्या के लिए छींट की दो कमीज़ें और पीपरमेंट के प्रियानिक ख़रीदे, उसे बहुत समझाया-बुझाया, लाड़-प्यार किया, पर वह मानता ही न था। बेक्कर के कमरे में बात हो रही थी, सो वह रोने से डरता था। वह अपना आंसुओं से फूला मुंह उसके दामन में छिपा लेता और जैसे ही वह दरवाज़े की ओर क़दम बढ़ाती कसकर उसके हाथ पकड़ लेता।

आख़िर कलाबाज़ इस सबसे आजिज़ आ गया। उसने लड़के का कालर पकड़कर उसे वर्वारा के लहंगे से अलग किया और जैसे ही धोबिन के पीछे दरवाज़ा बंद हुआ, उसे अपने सामने खड़ा किया और कहा कि उसकी ओर देखे।

पेत्या यों थरथरा रहा था, मानो उसे तेज़ बुख़ार हो; उसका मरियल सा चेहरा सिकुड़ गया, उसमें दयनीय, बूढ़ों का सा भाव आ गया।

बेक्कर ने उसकी ठोड़ी पकड़ी, मुंह अपनी ओर घुमाया और फिर से अपनी ओर देखने को कहा।

"ऐ, लड़का, सुन," वह बोला और पेत्या की नाक के सामने तर्जनी चमकाई, "अगर तू उधर चाहता," उसने दरवाज़े की ओर इशारा किया, "तो इधर पाता!.." उसने पीठ से थोड़ी नीचे दिखाया। "और ज़ोर-ज़ोर से पाता।" लड़के को छोड़कर वह बोला और बाक़ी बीयर पी ली।

उसी दिन वह पेत्या को सरकस में ले गया। वहां भाग-दौड़ मची हुई थी, सामान बांधा जा रहा था।

अगले दिन सरकस अपने सारे माल-असबाब, लोगों और घोड़ों के साथ गर्मियों भर के लिए रीगा जा रहा था।

पहले क्षणों में तो इस ख़बर और नई-नई छापों से पेत्या सहमा ही, उसके

मन में कोई कौतूहल नहीं जागा। वह एक कोने में दुबक गया और जंगली जानवर की तरह इधर-उधर जाते लोगों को देखने लगा, जो अजीबोग़रीब चीज़ें कहीं ले जा रहे थे। किसी-किसी की नज़र अनजान लड़के पर पड़ी, लेकिन उसकी ओर ध्यान देने की किसी को फ़ुरसत न थी और सब पास से गुज़रते जा रहे थे।

रीगा तक के दस दिनों के सफ़र में पेत्या अपने हाल पर छूटा रहा। डिब्बे में अब उसके आस-पास जो लोग थे – वे बिल्कुल अनजान न रहे थे। कइयों का वह आदी हो गया था; कई लोग हंसमुख थे, हंसी-ठट्ठा करते, गाने गाते थे और उसे उनसे डर नहीं लगता था। जोकर एड्वड्र्स जैसे कुछ ऐसे भी थे, जो आते-जाते उसका गाल थपथपा देते। एक बार एक औरत ने उसे माल्टे की एक फांक भी दी। संक्षेप में, यह कहिए कि वह धीरे-धीरे यहां का आदी हो रहा था और उसे यहां अच्छा भी लगता, बशर्ते कार्ल बग्दानविच की जगह कोई और उसे अपने पास रख लेता। उसका वह आदी न हो पा रहा था; उसे देखते ही पेत्या गुमसुम हो जाता, सिमट सा जाता और बस इसी फ़िक्र में रहता कि कहीं रुलाई न फूट पड़े।

जब कलाबाज़ ने उसे काम सिखाना शुरू किया, तब और भी मुश्किल दिन आए। पहले प्रयोगों के बाद बेक्कर को यह विश्वास हो गया कि लड़का उसने ठीक ही चुना है। पेत्या रोयें सा हल्का-फुल्का था और उसके जोड़ों में लचक थी; हां इन प्राकृतिक गुणों का लाभ उठाने के लिए पट्ठों में पर्याप्त शक्ति नहीं थी, लेकिन यह कोई बड़ी बात न थी। बेक्कर को इस बात में कतई संदेह न था कि अभ्यास से शक्ति आ जाएगी। इसका सबूत तो कुछ हद तक वह अभी ही देख रहा था। महीने भर तक वह सुबह-शाम लड़के को फ़र्श पर बिठाकर पैरों तक सिर झुकाने का अभ्यास कराता रहा था और अब पेत्या उसकी मदद के बिना ख़ुद ही ऐसा कर लेता था। उसके लिए पीछे मुड़ना और एड़ियों से सिर को छूना कहीं अधिक मुश्किल था; पर धीरे-धीरे वह यह भी सीख रहा था। वह दौड़ते हुए कुर्सी के ऊपर से भी बड़ी सफ़ाई से कूद जाता था; लेकिन जब उस्ताद यह मांग करता कि वह छलांग लगाकर पैरों पर नहीं, बल्कि हाथों के बल गिरे और टांगें हवा में रहें, तो ऐसा वह बहुत कम

ही कर पाता था। इस असफलता या ऐसे करते हुए लगी चोट का ही दुख होता तो कोई बड़ी बात न थी ; मुसीबत तो यह थी कि हर बार उसे बेक्कर के घूसे खाने पड़ते। लड़के के पट्ठे पहले की ही भांति कमज़ोर और सूखे थे। प्रत्यक्षत: उन्हें ज़ोर लगाकर मज़बूत करने की आवश्यकता थी।

बेक्कर के कमरे में ऊपर से जुड़ी और नीचे से खुलनेवाली दोहरी सीढ़ी लाई गई। उसकी पटरियों पर फ़र्श के समानांतर कुछ ऊंचाई पर एक डंडा रखा गया। बेक्कर के आदेश पर पेत्या को दौड़ते हुए डंडा पकड़ लेना होता और फिर हवा में लटके रहना होता – पहले पांच मिनट , फिर दस मिनट। दिन में कई बार उसे यह करना पड़ता। इस अभ्यास में विविधता बस यही थी कि क़भी तो वह यों ही हवा में लटकता रहता और कभी उसे डंडा पकड़े हुए सारा धड़ पीछे को करना होता और टांगों को डंडे और सिर के बीच से निकालना होता। इस अभ्यास का अंतिम लक्ष्य यह था कि लड़का पैरों के पंजों से डंडा पकड़ ले और अचानक हाथ छोड़कर पंजों के बल लटका रहे। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जब पांव ऊपर होते और सिर नीचे, तो पेत्या के चेहरे पर मुस्कान फैली होनी चाहिए थी ; ऐसा इसलिए करना आवश्यक था कि दर्शक प्रभावित हों, उन्हें किसी भी हालत में यह आभास नहीं होना चाहिए था कि मांस-पेशियों के तन जाने पर कितनी कठिनाई होती है, लड़के के कंधों के जोड़ों में कितना दर्द होता है और छाती कैसे दबी जाती है।

यह परिणाम बालक की ऐसी हृदयविदारक चीखों के साथ पाया जाता कि बेक्कर के साथी उसके कमरे में दौड़े आते और बालक को उसके हाथों से छुड़ाते। गाली-गलौज और झगड़ा होने लगता और इसके बाद पेत्या की और भी बुरी शामत आती। हां, कभी-कभी ऐसा हस्तक्षेप शांतिपूर्वक समाप्त होता। एड्वर्ड्स जोकर के आने पर ऐसा होता। वह बीयर और कुछ चबैने के साथ मामला रफ़ा-दफ़ा करता। इसके बाद की बातचीत में एड्वर्ड्स हर बार यह समझाने का जतन करता कि बेक्कर का सिखाने का तरीक़ा बिल्कुल ग़लत है, कि मार-पीट और डरा-धमकाकर बच्चों को तो क्या, कुत्तों, बंदरों को भी कुछ नहीं सिखाया जा सकता, कि भय से मन में संकोच पैदा होता है और संकोच कलाबाज़ का सबसे बड़ा दुश्मन है, क्योंकि तब वह अपनी शक्ति में

विश्वास और निडरता खो बैठता है, और इनके बिना तो बस उसकी नस चढ़ जाएगी या वह गर्दन नहीं, तो रीढ़ की हड्डियां ही तुड़वा बैठेगा।

आश्चर्य की बात थी : हर बार जब बहस और बीयर से जोश में आकर एड्वड्र्स यह दिखाने लगता कि कोई करतब कैसे करना चाहिए तो पेत्या बड़ी तत्परता और फुर्ती से वह अभ्यास कर दिखाता।

सभी सरकस वाले अब बेक्कर के शागिर्द को जानते थे। बेक्कर ने उसके लिए जोकर के कपड़े ले लिए थे, उसके मुंह पर पाउडर पोतकर और गालों पर सुर्खी लगाकर वह उसे तमाशे में ले जाता। कभी-कभी उसे परखने के लिए बेक्कर अचानक उसकी टांगें ऊपर उठा लेता और हाथों के बल रेत पर दौड़ाता। पेत्या तब अपना पूरा ज़ोर लगाता, लेकिन अक्सर कुछ दूर दौड़ने के बाद उसकी बांहें जवाब दे जातीं और सिर रेत में जा लगता, जिससे दर्शक ठट्ठा लगा उठते।

इसमें कोई संदेह न था कि एड्वड्र्स से पेत्या बहुत ज़्यादा सीख सकता था; बेक्कर के हाथों में उसके लिए अपने हुनर में आगे बढ़ना मुश्किल हो रहा था। पेत्या पहले दिन की ही भांति अपने उस्ताद से डरता था। अब इसके साथ ही मन में एक और भावना भी उठने लगी थी, जिसे वह समझ तो नहीं पाता था, लेकिन जो उसमें ज़ोर पकड़ती जा रही थी, उसके विचारों और भावों पर हावी हो रही थी, जिसके कारण रात को तोशक पर लेटे हुए वह बेक्कर के खर्राटे सुन-सुनकर आंसू बहाता रहता।

और बेक्कर था कि लड़के को अपने साथ परचाने के लिए कुछ भी नहीं करता था, बिल्कुल कुछ नहीं। यहां तक कि जब पेत्या कोई करतब अच्छी तरह कर लेता, तो भी बेक्कर उसे प्यार का एक शब्द न कहता; बस अपने पहाड़ जैसे धड़ के ऊपर से उस पर एक नज़र डाल देता कि हां ठीक है। बेक्कर को इस बात की कोई परवाह न थी कि वर्वारा धोबिन ने लड़के को जो दो कमीज़ें दी थीं वे अब चीथड़े-चीथड़े हो गई थीं, कि लड़के के नीचे पहनने के कपड़े दो-दो हफ़्ते तक बदले न जाते, कि उसके कानों और गर्दन पर मैल की तहें जम गई थीं, कि उसके बूटों ने दांत बा दिए थे, उनमें पानी और कीचड़ भर जाता था।बेक्कर के साथी और सबसे ज़्यादा एड्वड्र्स उसे इसका उलाहना

देते थे ; जवाब में बेक्कर अधीरता से सीटी बजाता रहता और अपनी पतलून पर कोड़ा सटकारता रहता।

वह पेत्या को काम सिखाता जा रहा था और हर बार ज़रा सी भी ग़लती होने पर उसे सज़ा देता।

सरकस के पीटर्सबर्ग लौट आने के बाद की बात है। एड्वर्ड्स ने पेत्या को एक पिल्ला ले दिया। लड़के की ख़ुशी का ठिकाना न था, वह घुड़साल में, गलियारों में उसे लिए दौड़ रहा था, सबको पिल्ला दिखा रहा था, और बार-बार उसकी गीली सी, गुलाबी थूथनी चूम रहा था।

बेक्कर का तमाशा देखकर लोगों ने उसे तालियां बजाकर दुबारा नहीं बुलाया था और इस बात पर जला-भूना वह अंदर के गलियारे में लौट रहा था। पेत्या के हाथ में पिल्ला देखकर उसने छीन लिया और जूते की नोक से उसे ज़ोर से ठोकर मारी। पिल्ले का सिर दीवार से टकराया और वह वहीं ढेर हो गया।

पेत्या फूट-फूटकर रो पड़ा और उसी क्षण ड्रेसिंग रूम से निकले एड्वर्ड्स की ओर लपका। आस-पास लोगों को बुरा-भला कहते सुनकर बेक्कर और भी ज़्यादा खिसिया उठा, उसने झटके से पेत्या को एड्वर्ड्स के हाथों से छीना और कसकर थप्पड़ दे मारा।

पेत्या हल्का-फुल्का और लचकीला ज़रूर था, पर फिर भी वह रबड़ का पुतला नहीं, अभागा बालक ही था।

(२)

काउंट लिस्तमीरव के घर में बच्चों के कमरे दक्षिण को बाग़ की ओर थे। क्या शानदार जगह थी! जब आसमान पर सूरज चमकता होता तो सुबह से शाम तक कमरों में धूप रहती ; केवल निचले भाग में खिड़कियों पर नीले पर्दे लगाए गए थे – बच्चों की आंखों को तेज़ प्रकाश से बचाने के लिए। इसी उद्देश्य से सभी कमरों में कालीन बिछाए गए थे – वे भी नीले रंग के और दीवारों पर लगाए गए कागज़ अधिक उजले रंगों के नहीं थे।

एक कमरे में दीवार का सारा निचला भाग खिलौनों से भरा हुआ था। रंग-बिरंगी अंग्रेज़ी किताबें और कापियां, गुड़ियां और उनके पालने, तसवीरें, अल्मारियां, छोटी-छोटी रसोइयां, चीनी मिट्टी के सेट, पहियेदार भेड़ें और कुत्ते – यह सब लड़कियों के हिस्से में था और लड़कों के हिस्से में थे जस्ते के सिपाही, बड़ी-बड़ी आंखोंवाले सब्ज़े घोड़ों की त्रोइका गाड़ी, जिस पर घुंघरू लगे हुए थे, बड़ा सा सफ़ेद बकरा, घुड़सवार, ढोल और पीतल का बाजा, जिसकी आवाज़ से अंग्रेज़ मिस ब्लिक्स हमेशा झुंझलाती थी। यह कमरा खिलौनों का कमरा ही कहलाता था।

मास्लेनित्सा* के दिनों में बुधवार को कमरे में बड़े उत्साह का वातावरण था। बच्चों की खुशी भरी चीखें गूंज रही थीं। इसमें आश्चर्य की कोई बात न थी ; इस दिन बच्चों से कहा गया था :

"बच्चो, मास्लेनित्सा के शुरू से ही तुम बड़े अच्छे बच्चे रहे हो, कहना मानते रहे हो। आज बुधवार है ; अगर आगे भी तुम ऐसे ही रहे, तो शुक्रवार को तुम्हें सरकस ले जाएंगे!"

यह बात सोन्या मौसी ने कही थी।

मौसी का यह वायदा करने की देर थी कि बच्चे हुर्रा-हुर्रा करने लगे, उछलने-कूदने लगे और भी कई तरह से अपनी खुशी दिखाने लगे। इस उमंग में पांचवर्षीय बालक पाफ़ ने सब को आश्चर्यचकित कर दिया। वह सदा से बड़ा भारी-भरकम था, पर अब कहानियां सुनकर और यह जानकर कि सरकस में वह क्या देखेगा, वह अचानक हाथों-पैरों पर खड़ा हो गया और बाईं टांग ऊपर उठाकर अपनी जीभ निकालकर गाल पर घुमाने लगा और कमरे में उपस्थित लोगों को अपनी किर्गिज़ आंखों से देखता हुआ जोकर बनने लगा।

"उठाओ इसे, उठाओ जल्दी से, नहीं तो इसके सिर पर खून चढ़ जाएगा।"

---

* फ़रवरी के अंत और मार्च के आरम्भ में इसाइयों के चालीसे (महा उपवास) के पहले एक हफ़्ते तक मनाया जानेवाला त्योहार। इसके दौरान पूए पकाए जाते हैं और खेल-तमाशे होते हैं। – सं०

फिर से होहल्ला होने लगा, पाफ़ के चारों ओर उछल-कूद होने लगी, जो उठना ही न चाहता था और कभी एक टांग, तो कभी दूसरी टांग उठा रहा था।

"बच्चो!.. बस, अब बस!.. लगता है, तुम अब समझदार नहीं बनना चाहते ... कहना नहीं मानना चाहते," सोन्या मौसी कह रही थीं, जिन्हें सबसे ज़्यादा उलझन इसी बात की थी कि उन्हें ग़ुस्सा करना नहीं आता था।

वह इन्हें "अपने बच्चे" ही कहती थीं और उन पर लट्टू थीं। बच्चे सचमुच ही बड़े प्यारे थे।

बड़ी बच्ची वेरा आठ साल की हो गई थी, उसके बाद थी छह साल की ज़ीना और लड़का, जैसा कि कहा जा चुका है पांच साल का था। उसका नाम था, पावेल, पर उसे घर पर कई तरह से पुकारा जाता रहा: बेबी, लट्टू, लड्डू और अंतत: पाफ़। अब सब उसे इस नाम से ही पुकारते थे। लड़का नाटा सा, गोल-मटोल था, गोरा, गदबद बदन, गेंद सा सिर और गोल चेहरा, जिस पर एकमात्र विशिष्टता थी उसकी छोटी-छोटी किर्गिज़ आंखें, जो खाना परोसे जाने पर या खाने की चर्चा होने पर ही पूरी तरह खुलती थीं।

जिस क्षण सरकस जाने का वायदा किया गया, उसी क्षण से बड़ी बेटी सतर्क हो गई और भाई-बहन पर पूरी तरह नज़र रखने लगी। उनके बीच कोई झगड़ा होने ही लगता, तो वह तुरंत उनके पास पहुंच जाती और रोबीली मिस ब्लिक्स की ओर देखती हुई जल्दी-जल्दी ज़िज़ी और पाफ़ के कानों में कुछ कहने लगती, बारी-बारी उन्हें चूमती और फिर से सुलह-शांति करा देती।

लो, इतनी अधीरता से प्रतीक्षित शुक्रवार भी आ गया। भोजन कक्ष की बड़ी घड़ी ने बारह बजाए। उसी क्षण एक चोबदार ने दरवाज़े खोल लिए और मिस ब्लिक्स तथा नौकरानी के साथ बच्चों ने भोजन कक्ष में प्रवेश किया। नाश्ता सदा की तरह बड़े सलीक़े से किया गया।

वेरा ने ज़िज़ी और पाफ़ को सचेत कर दिया था, सो नाश्ता करते हुए वे बिल्कुल चुप रहे; वेरा भाई-बहन पर नज़र लगाए हुए थी और उनकी हर हरकत का ख़्याल रख रही थी।

नाश्ता समाप्त हो जाने पर मिस ब्लिक्स ने काउंटेस को यह बताना अपना कर्त्तव्य समझा कि इन पिछले दिनों में बच्चों का आचरण जितना अच्छा रहा

है, उतना पहले कभी नहीं था। काउंटेस बोलीं कि वह दीदी से यह बात सुन चुकी हैं और इसलिए उन्होंने कह दिया है कि आज शाम को सरकस में एक बॉक्स ले लिया जाए।

वेरा इतनी देर से अपनी खुशियों के बांध को रोके हुए थी, यह समाचार सुनकर अब उससे न रहा गया। वह झट से कुर्सी से उतरी और इतने ज़ोर से काउंटेस के गले लगने लगी कि क्षण भर को उसके घने बालों के पीछे उनका चेहरा छिप गया।

वेरा ग्रैंड पियानो के पास गई, जिस पर इश्तहार रखे हुए थे। उनमें से एक पर हाथ रखकर उसने अपनी नीली-नीली आंखें मां की ओर उठाईं और उतावली भरे कोमल स्वर में पूछा :

"मां ... ले लें ?.. यह पर्चा ले लें ?"

"ले लो।"

"ज़िज़ी ! पाफ़ !" वेरा खुशी से चिल्लाई और इश्तहार को हिलाने लगी। "जल्दी चलो ! मैं तुम्हें बताऊंगी आज हम सरकस में क्या-क्या देखेंगे : सब कुछ बताऊंगी !.. चलो अपने कमरों में चलें !.."

"वेरा ! वेरा ..." काउंटेस ने मीठी उलाहना के साथ कहा।

पर वेरा अब नहीं सुन रही थी : वह उड़ती जा रही थी और उसके पीछे भाई-बहन। मिस ब्लिक्स हांफती हुई मुश्किल से उनके पीछे चल पा रही थी।

खिलौनों के कमरे में धूप खिली हुई थी, अब वहां की रौनक और भी बढ़ गई।

नीची सी मेज़ को खिलौनों से खाली करके इश्तहार रखा गया।

वेरा का आग्रह था कि सभी उपस्थित लोग : सोन्या मौसी और मिस ब्लिक्स, संगीत की अध्यापिका और धाय, जो अभी-अभी मुन्ने को उठाए अंदर आई थी – सभी मेज़ के पास बैठ जाएं। ज़िज़ी और पाफ़ को बिठाना सबसे मुश्किल था। वे एक दूसरे को धकेलते हुए कभी एक ओर, तो कभी दूसरी ओर से वेरा के पीछे पड़ रहे थे, स्टूल पर चढ़ जाते, मेज़ पर झुक जाते और अपनी कोहनियों से आधा इश्तहार ढंक लेते। आखिर मौसी की मदद से उन्हें भी बिठा दिया गया।

वेरा ने बाल पीछे झटके, इश्तहार पर झुकी और बड़े जोश से पढ़ा :

"'रबड़ का पुतला। पंद्रह फ़ुट ऊंचे पोल पर हवाई कलाबाज़ी!' ओह, मौसी! यह तो आप हमें बताइये! आपको बताना ही होगा! यह कैसा पुतला है? पुतला कैसे कलाबाज़ी दिखाएगा?"

"यह शायद कोई लड़का है, जो बहुत लचकीला है, इसलिए उसे रबड़ का पुतला कहते हैं... तुम खुद ही देख लेना।"

"नहीं, नहीं, आप हमें बताइए न, वह पोल पर हवा में कलाबाज़ी कैसे करेगा?"

"कैसे करेगा?" ज़िज़ी भी बोली।

"कैसे?" पाफ़ के मुंह से बस इतना ही निकला।

"बच्चो, तुम तो पता नहीं क्या-क्या पूछने लगते हो... मुझे सचमुच कुछ नहीं पता। आज शाम को तुम अपनी आंखों से यह सब देख लोगे। वेरा, तुम आगे पढ़ो न। आगे क्या है?"

आगे क्या था, यह वेरा ने बिना किसी विशेष उत्साह के ही पढ़ा; इसमें किसी की रुचि न रही थी। सारी रुचि रबड़ के पुतले पर ही केंद्रित थी; अब उसी की बातें होने लगीं, अटकलें लगाई जाने लगीं और बहस भी होने लगी।

ज़िज़ी और पाफ़ आगे क्या है, यह सुनना भी नहीं चाहते थे, वे अपने-अपने स्टूल से उतर गए और शोर मचाते हुए खेलने लगे। वे यह कल्पना कर रहे थे कि रबड़ का पुतला क्या तमाशा दिखाएगा। पाफ़ फिर से हाथों-पैरों पर खड़ा हो गया, जोकर की तरह बाईं टांग ऊपर उठाकर और जीभ को गाल तक ले जाते हुए वह सबको अपनी किर्गिज़ आंखों से देखता। हर बार जब वह ऐसा करता तो सोन्या मौसी आह भरतीं, उन्हें डर था कि कहीं उसके सिर पर ख़ून न चढ़ जाए।

जल्दी-जल्दी इश्तहार पढ़कर वेरा भी भाई-बहन के साथ खेलने लगी।

खिलौनों के कमरे में पहले कभी भी ऐसा आनंद का वातावरण न बना था। बाग़ के पीछे मकानों की छतों पर झुकते सूरज की किरणें भी हर्षोल्लास से भरपूर, लाल-लाल गालों वाले बच्चों के साथ खेल रही थीं, कमरे में बिखरे रंग-बिरंगे खिलौनों को चमका रही थीं, कालीन पर फैल रही थीं, सारे

कमरे को गुलाबी धूप से भर रही थीं। यहां खुशियों और उमंगों का राज प्रतीत होता था।

खाना खाते हुए बच्चे यही पूछते रहे कि मौसम कैसा है और कितने बजे हैं। सोन्या मौसी व्यर्थ ही यह जतन करती रहीं कि बच्चों के विचारों को दूसरी दिशा में मोड़ें और उन्हें कुछ शांत कर पाएं। खाने के बाद मौसी बच्चों के कमरे में लौटीं ; उनका चेहरा खुशी से चमक रहा था। वह बोलीं : काउंट और काउंटेस ने बच्चों को कपड़े पहनाने और सरकस ले जाने को कहा है।

कमरे में तूफ़ान मच गया। अब यह धमकी देनी पड़ी कि जो कहना नहीं मानेगा, ठीक से कपड़े नहीं पहनाने देगा उसे घर पर छोड़ जाएंगे। थोड़ी देर में बच्चों को बड़ी सीढ़ी पर ले जाया गया। वहां फिर से ध्यान से देखा गया, कपड़े ठीक किए गए और अंततः दरवाज़े से बाहर निकाला गया। वहां चार सीटोंवाली बंद स्लेज गाड़ी घोड़ों से जुती खड़ी थी। वह चारों ओर हिम से घिरी थी।

गाड़ी के दरवाज़े बंद हुए, चोबदार उछलकर कोच-बॉक्स पर बैठ गया और वे चल दिए।

(३)

सरकस का शो अभी शुरू नहीं हुआ था। सरकस ठसाठस भरा हुआ था, ख़ास तौर पर ऊपर की कतारों में ख़ूब भीड़ थी। बड़े लोग हमेशा की तरह देर से आ रहे थे। बैंड बज रहा था। सरकस के गोल रिंग पर अगल-बगल और ऊपर से तेज़ रोशनी पड़ रही थी। पांचों से उसे सपाट कर दिया गया था और वह अभी ख़ाली था।

सहसा बैंड की धुन तेज़ हो गई। अस्तबल की ओर का पर्दा खुला और उधर से डोरियों वाली लाल वार्दियां तथा ऊंचे चमकीले बूट पहने कोई बीस लोग आए। उनके सिरों पर बालों की कुंडलें बनी हुई थीं और क्रीम से चमक रही थीं।

सरकस में ऊपर से नीचे तक प्रशंसा भरी फुसफुसाहट दौड़ गई। तमाशा शुरू हो रहा था। अभी ये वर्दीधारी सदा की तरह दो-दो की कतार बना भी न पाए थे कि अस्तबल की ओर से खिलखिलाहट और चीं-चीं करके हंसने की ज़ोरदार आवाज़ आई, जोकरों का झुंड का झुंड लोटता-पोटता, हाथों पर कूदता, हवा में उछलता रिंग पर आ पहुंचा।

सबसे आगे जो जोकर था उसके कोट की छाती और पीठ पर बहुत बड़ी तितली बनी हुई थी। दर्शक अपने प्यारे जोकर एड्वर्ड्स को पहचान गए।

"हुर्रा, एड्वर्ड्स, हुर्रा।" चारों ओर से आवाज़ें आईं।

परंतु इस बार एड्वर्ड्स ने दर्शकों की आशा के अनुसार रंग नहीं जमाया। उसने कोई ख़ास करतब नहीं दिखाया; एक-दो बार सिर के बल कलाबाजियां खाईं, फिर नाक पर मोर का पंख संभालते हुए रिंग का चक्कर लगाया और जल्दी से चला गया। दर्शकों ने बहुत तालियां बजाईं, आवाज़ें लगाईं, पर वह फिर से रिंग पर नहीं आया।

उसके स्थान पर जल्दी-जल्दी एक मोटा सफ़ेद घोड़ा लाया गया और पंद्रह वर्ष की सुंदर युवती अमालिया ने चारों ओर झुकते हुए आदाब बजाया।

अमालिया के बाद बाज़ीगर आया; बाज़ीगर के बाद सधे हुए कुत्तों के साथ जोकर; उसके बाद रस्से पर नाच हुआ; फिर घोड़े; बिना काठी के घुड़सवारी हुई, फिर दो घोड़ों पर काठी के साथ – संक्षेप में यह कि इंटरवल तक तमाशा अपने क्रम से चलता रहा।

"मौसी, प्यारी मौसी, अब रबड़ का पुतला होगा न?" वेरा ने पूछा।

"हां, इश्तहार में लिखा है कि वह इंटरवल के बाद होगा। तो बच्चो, कैसा लग रहा है? मज़ा आ रहा है?"

"ओह, बड़ा मजा आ रहा है!.. बड़ा!" वेरा ने ख़ुशी से चहचहाते हुए कहा।

"ज़िज़ी, तुम्हें? पाफ़, तुम्हें मज़ा आ रहा है?"

"यहां ठां-ठां होगी?" ज़िज़ी ने पूछा।

"अरे नहीं, बेटा, घबराओ नहीं। कह दिया न, नहीं होगी।"

पाफ़ से कुछ कहलवाना असम्भव था। इंटरवल के शुरू से ही उसका

सारा ध्यान फेरीवाले पर लगा हुआ था, जो सेब और मिठाइयां बेच रहा था।

फिर से बैंड बजने लगा, फिर से लाल वर्दी वाले दो कतारों में खड़े हुए। सरकस का दूसरा भाग आरम्भ हुआ।

"रबड़ का पुतला कब आएगा?" हर बार जब एक के बाद दूसरा तमाशबीन आता, तो बच्चे पूछते। "कब आएगा?"

"अभी..."

सचमुच ही वह आ गया। वाल्स नृत्य की धुन के साथ पर्दा खुला और भीमकाय कलाबाज़ बेक्कर दुबले-पतले सुनहरी बालों वाले लड़के की उंगली पकड़े प्रकट हुआ। दोनों बदन से सटी, त्वचा के रंग की पोशाक पहने थे, जिस पर सलमे-सितारे चमक रहे थे। उनके पीछे-पीछे दो नौकर लंबा सुनहरी पोल लाए, जिसके एक सिरे पर लोहे की आड़ी छड़ लगी हुई थी।

रिंग के बीचोंबीच पहुंचकर बेक्कर और लड़के ने चारों ओर झुककर सलाम किया, फिर बेक्कर ने लड़के की पीठ पर दायां हाथ रखकर उसे तीन बार हवा में घुमाया। पर यह तो केवल शुरुआत ही थी। फिर से उन्होंने झुककर सलाम किया, बेक्कर ने पोल उठा लिया, उसका मोटा सिरा पेट पर बंधी सुनहरी पेटी पर टिकाया, और उसके दूसरे सिरे को संतुलित करने लगा, जो सरकस के गुम्बद को छूता लगता था। इस तरह पोल को संतुलित करके कलाबाज़ ने लड़के से फुसफुसाकर कुछ कहा और वह पहले उसके कंधों पर चढ़ा और फिर धीरे-धीरे पोल पर चढ़ने लगा। लड़के की हर गति से पोल हिलने लगता और बेक्कर पैर बदलता हुआ उसे संतुलित करता।

जब लड़के ने पोल के ऊपर चढ़कर दर्शकों को हवाई चुम्बन भेजा तो सरकस तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। फिर से सन्नाटा छा गया, बस बैंड ही वाल्स की धुन बजाता जा रहा था। इस बीच लड़का लोहे की छड़ पकड़कर सीधा हो गया और फिर हौले-हौले पीछे को हटते हुए अपने सिर और छड़ के बीच से टांगें निकालने लगा; पल भर को उसके नीचे को लटकते सुनहरी बाल और धौंकनी की तरह चलती छाती ही दिखी, जो सलमे-सितारों से चमक रही थी। पोल एक ओर से दूसरी ओर को हिल रहा था और यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता था कि बेक्कर के लिए उसे संतुलित रखना कितना कठिन है।

"वाह! वाह! शाबाश!" फिर से हाल गूंज उठा।

"बस!.. बस!" दो-तीन जगहों से आवाज़ें आईं।

लेकिन जब लड़का फिर से आड़ी छड़ पर बैठा दिखा और वहां से उसने हवाई चुम्बन भेजा, तो हाल में तालियां गड़गड़ा उठीं। बेक्कर एकटक लड़के को देखे जा रहा था, उसने फुसफुसाकर कुछ कहा। लड़का धीरे-धीरे दूसरा करतब दिखाने लगा। हाथों से छड़ पकड़े हुए वह सावधानी से टांगें नीचे करने और पीठ के बल लेटने लगा। अब उसे सबसे मुश्किल काम करना था: उसे पीठ के बल लेटकर छड़ पर इस तरह टिकना था कि सिर और टांगों में संतुलन आ जाए और फिर सहसा पीठ पर पीछे को सरक जाना था, छड़ को घुटनों के नीचे से ही पकड़े रहना था।

सब ठीक-ठाक चल रहा था। हां पोल काफ़ी ज़ोर से हिल रहा था, पर रबड़ का पुतला आधा रास्ता तय कर चुका था; वह नीचे ही नीचे झुकता जा रहा था और पीठ पर सरक रहा था।

"बस! बस! बहुत हो गया!" कुछ ज़ोरदार आवाज़ें आईं।

लड़के की पीठ सरकती जा रही थी और वह धीरे-धीरे सिर के बल नीचे झुकता जा रहा था...

अचानक एक चमक हुई, हवा में बल खाता हुआ कुछ घूम गया, उसी क्षण रिंग पर कुछ गिरने की धम्म सी आवाज़ आई।

पलक झपकते ही हाल में तहलका मच गया। कुछ लोग शोर मचाने लगे, चीखने की आवाज़ें आईं, डाक्टर की पुकार सुनाई दी। रिंग पर भी भाग-दौड़ मची हुई थी; नौकरों और जोकरों ने जल्दी-जल्दी अंदर आकर बेक्कर को घेर लिया। कुछ लोगों ने कुछ उठाया और नीचे को झुकते हुए जल्दी से पर्दे की ओर ले गए, जिसके पीछे अस्तबल का दरवाज़ा था, रिंग पर बस सुनहरा पोल रह गया, जिसके एक ओर लोहे की आड़ी छड़ लगी हुई थी। मिनट भर को थम गए बैंड को इशारा किया गया और वह फिर से बजने लगा। चीं-चीं करते, कलाबाज़ियां खाते कुछ जोकर रिंग पर आए, लेकिन उनकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लोग बाहर निकल रहे थे।

इस सब भाग-दौड़ और शोर-शराबे में भी कई लोगों का ध्यान नीली

टोपी पहने सुनहरी बालों वाली प्यारी सी लड़की की ओर गया ; काली पोशाक पहने स्त्री के गले में बाहें डाले वह दहाड़ें मारकर रो रही थी और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी :

"हाय , लड़का ! लड़का !"

अगले दिन सुबह सरकस के इश्तहार में "रबड़ के पुतले" के करतबों का ज़िक्र न था। बाद में भी उसका नाम इश्तहारों में नहीं आया। आ भी कैसे सकता था : रबड़ का पुतला इस दुनिया में नहीं रहा था।